जीत के आगे डर क्यों?

संजीव आचार्य

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हिमाचल प्रदेश के मतदाताओं को भी डबल इंजन सरकार की दुहाई देते हुए भाजपा को एक बार फिर सत्ता सौंपने की अपील की थी लेकिन वो अपील बेअसर रही। हर पांच साल में सत्ता परिवर्तन की अपनी परिपाटी को कायम रखते हुए राज्य के लोगों ने राजनीतिक सफाये की तरफ बढ़ रही कांग्रेस को सत्ता सौंपकर संजीवनी दी है। इस सत्ता को कायम रखने की चुनौती कांग्रेस के लिए बड़ी परीक्षा है। गुजरात के मतदाताओं के लिए जैसे नरेंद्र मोदी के साथ आत्मीयता का रिश्ता है, और सभी मुद्दों को दरकिनार करते हुए भी वो उनकी अपील पर भाजपा को वोट देते हैं, कुछ हद तक हिमाचल में यही कांग्रेस के साथ है। प्रदेश के निर्माण का श्रेय तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के नाम पर है। इसका आज भी हिमाचलियों के मानस पर असर है। हिमाचल प्रदेश में कांग्रेस को सबसे बड़ा फायदा पूर्ववर्ती पेंशन योजना को फिर से लागू करने के वायदे का मिला है। प्रदेश में दो लाख से ज्यादा सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी हैं। वो पिछले कई महीनों से इस मांग को लेकर धरना प्रदर्शन कर रहे हैं। कांग्रेस की राजस्थान और छत्तीसगढ़ सरकार ने ओल्ड पेंशन स्कीम को लागू करने की दिशा में कदम बढ़ा दिये हैं। पार्टी ने हिमाचल प्रदेश में भी इसको लागू करने का घोषणा पत्र में वायदा किया, जिसका सकारात्मक समर्थन पार्टी को मिला है।

इसके अलावा राज्य में बड़ी संख्या में युवा हर साल सेना की नौकरियों में प्रयास करते हैं। केंद्र सरकार की अग्निवीर योजना से इन युवाओं में आक्रोश व्याप्त है। क्योंकि यह योजना सिर्फ चार साल की नौकरी के अनुबंध की है। अपने बड़े बूढ़ों को सेना में स्थायी नौकरी और फिर पेंशन लेते देखने वाले युवाओं को अग्निवीर योजना पच नहीं रही है। हिमाचल प्रदेश में सरकारी कर्मचारियों के बाद दूसरी प्रभावशाली लॉबी सेब उत्पादकों की है। ऊपरी हिमाचल में इनका वर्चस्व है। इन लोगों में भी दो कारणों से नाराजगी व्याप्त है। एक- सेब के सबसे बड़े खरीददार अडानी बन गए हैं। वो उत्पाद का कम मूल्य दे रहे हैं। ऊपर से केंद्र सरकार ने जीएसटी लगा दी है। इस कारण सेब उत्पादक वर्ग नाराज है। जाहिर है ये नाराजगी भाजपा के खिलाफ है। कांग्रेस और आम आदमी पार्टी ने इस मुद्दे को खूब हवा भी दी। हिमाचल प्रदेश में भाजपा को अपने मुख्यमंत्री जयराम ठाकुर के लचर प्रशासन का भी खामियाजा भुगतना पड़ा है। पांच साल में नौ मुख्य सचिव नियुक्त किए गए। मुख्यमंत्री और मुख्य सचिव का समन्वय बैठ ही नहीं पाया। इसका असर प्रशासन के निर्णयों में देखने को मिला। पुलिस भर्ती घोटाले के कारण भी जयराम सरकार की बहुत आलोचना हुई। मंत्रियों के साथ मतभेद, विधायकों की नाराजगी इन सब से मुख्यमंत्री निपटने में सफल नहीं हो सके। भारतीय जनता पार्टी के केंद्रीय पर्यवेक्षक इस बात को समझ तो गए कि राज्य में सरकार के खिलाफ एंटी इनकम्बेंसी फैक्टर है, लेकिन उससे निपटने के लिए 11 विधायकों का टिकट काटने का फैसला उल्टा पड़ गया। बगावत की चिंगारियां बहुत सीटों पर उम्मीदों को जलाने के लिए पर्याप्त थी। वही हुआ भी। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के फोन पर समझाने के बावजूद बागी नहीं माने। भले ही वोट ज्यादा न काट पाए, लेकिन माहौल खराब तो कर ही दिया। कांग्रेस को इन सब मुद्दों का लाभ मिला। केंद्रीय नेताओं की बेरुखी, भारत जोड़ो यात्रा में व्यस्तता के बावजूद पार्टी को राज्य में भाजपा के खिलाफ व्याप्त गुस्से का फायदा मिला। नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता, अपील और प्रचार भी कोई असर नहीं डाल सके। अब कांग्रेस के सामने सबसे बडी चुनौती सरकार को बचाने और चलाने की है। जिस तरह से कांग्रेस के विधायकों ने मध्य प्रदेश, गोआ, पूर्वोत्तर राज्यों में पाला बदलकर अपनी ही सरकार गिरवाई, या नहीं बनने दी, उस परिप्रेक्ष्य में खतरा बना रहेगा।

विचारधारा पर भारी है मोदी का कद और उनकी छवि

शेखर गुप्ता

चुनावों का एक और दौर समाप्त हो चुका है और हम भविष्य का अनुमान लगाने का प्रयास कर सकते हैं। शुरुआत उस सवाल से करते हैं जो हमने 2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के तीन महीने बाद उठाया था- क्या आपने कोई ऐसा राजनेता देखा है जिसका मुखौटा उसके चेहरे से इतना मेल खाता हो जितना मोदी का उनके चेहरे से मिलता है?

यह सवाल जुबानी खेल भर नहीं था। दूसरी ओर इससे उनकी राजनीति और विचारधारा के बारे में भी एक अहम दलील तैयार होती है कि आप जिस व्यक्ति को देख रहे हैं वह वैसा ही है जैसा आप उसे पाते हैं। हमने सत्ता में वैचारिक नेता देखे हैं और ऐसे भी जो विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। इन नेताओं में विपक्ष में रहते हुए तो अपनी वैचारिक मान्यताओं की बात जमकर की लेकिन सत्ता में आने के बाद उन्होंने अपना नजरिया बदल दिया।

सत्ता में आने के बाद उन्हें अपनी राजनीतिक मान्यताओं को लेकर नरमी बरतनी होती थी। दक्षिणपंथियों में यह बात वाजपेयी और आडवाणी पर लागू होती है तो लोहियावादी वाम में जॉर्ज फर्नांडिस और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) के इंद्रजित गुप्त और धुर वाम के चतुरानन मिश्र पर यह बात लागू होती है।

विचारधारा में नरमी बरतने के लिए संविधान, संस्थान और सार्वजनिक पदों पर समावेशन आदि को वजह बनाया जाता। नरेंद्र मोदी ने अपने कार्यकाल के शुरुआती कुछ सप्ताह में ही इसे बदल दिया। वह 2011 में भी इसका प्रदर्शन कर चुके थे जब उन्होंने मुस्लिमों की प्रार्थना में इस्तेमाल होने वाली टोपी पहनने से इनकार कर दिया था।

उनके सत्ता में आने के बाद हमने देखा कि कैसे यह उनकी शासन शैली में केंद्रीय भूमिका रखता है। उनके मंत्रिमंडल में या संवैधानिक पदों पर तथा दोनों सदनों में उनके दल में मुस्लिम सदस्यों की तादाद धीरे-धीरे कम होने लगी। प्रधानमंत्री कार्यालय में होने वाली रस्मी इफ्तार पार्टियां भी समाप्त हो गईं।

उनके मंत्रियों और पार्टी नेताओं ने इस संकेत को जल्दी समझ लिया। वह अपनी विचारधारा के प्रति सच्चे थे, उसे जीते थे और उसका प्रदर्शन भी करते थे। हालांकि वह सार्वजनिक रूप से अल्पसंख्यकों के बारे में कुछ बुरा नहीं कहते। हालांकि कुछ खास हालात में यानी चुनाव प्रचार के दौरान उन्होंने यह नियम भी तोड़ा। ऐसा उन राज्यों में खासतौर पर किया गया जहां हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण एक संभावना है।

चूंकि हालिया चुनाव के नतीजे हमें अगले 16

महीनों के दौरान देश की राजनीति पर नजर डालने का एक अच्छा अवसर देते हैं तो हमारे लिए यह आकलन करने का सही वक्त होगा कि क्या यह रवैया मोदी के लिए कारगर रहा। वह इसे जारी रखेंगे अगर नहीं तो क्या उनका रुख नरम होगा या वह इस पर और अधिक जोर देंगे

अब तक मोदी की चुनावी राजनीति इतनी अधिक कामयाब रही है और इसके बारे में सवाल उठाने पर आपको मूर्ख भी कहा जा सकता है। परंतु हमें कुछ प्रश्न तो उठाने ही चाहिए। भाजपा-आरएसएस की विचारधारा के दो पहलू हैं- राष्ट्रवाद और हिंदुत्व। सबसे पहले चुनावी क्षमता की बात करें तो यहां बहस बहुत कम है। हमने देखा कि कैसे पुलवामा-बालाकोट ने 2019 के चुनावों को नाटकीय रूप से बदल दिया और कितना गंभीर असर डाला।

जिन लोगों ने इन घटनाओं पर सवाल उठाए उन्हें मतदाताओं ने सबक सिखाया। परंतु वह राष्ट्रीय चुनाव थे। हम निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकते कि क्या हिंदुत्व ने किसी राष्ट्रीय चुनाव में इतनी निर्णायक भूमिका निभाई या फिर क्या राज्यों के चुनाव में हिंदुत्व या राष्ट्रवाद की ऐसी भूमिका रही। ताजा उदाहरण देखें तो हिमाचल प्रदेश में यह कारगर नहीं रहा जबकि वहां ज्यादातर हिंदू हैं और अधिकांश परिवारों का सेना से रिश्ता और भाजपा/आरएसएस से संबंध रहा है। इसके बावजूद पार्टी सत्ता विरोधी लहर मुकाबला करने में नाकाम रही जबकि उसका सामना एक कमजोर राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्वी से था।

अगर पार्टी की यह हार किसी क्षेत्रीय दल के खिलाफ होती तो मामला दूसरा होता। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस के सामने मिली हार। परंतु इस हार ने 2018 के बाद भाजपा की कांग्रेस खिलाफ 92 फीसदी सफलता के सिलसिले को तोड़ा है। वहां राष्ट्रवाद और हिंदुत्व का मसला नहीं था, मोदी नहीं थे इसलिए यह एक सामान्य चुनाव बन गया।

दिल्ली नगर निगम चुनाव में उनकी पार्टी बिखराव और भ्रष्ट प्रदर्शन के रिकॉर्ड के साथ उतरी। पार्टी ने अपनी एजेंसियों की मदद लेकर और आप के खिलाफ भ्रष्टाचार का मामला बनाकर लड़ने की ठानी लेकिन यहां मोदी के नाम पर जीता नहीं जा सकता था और विचारधारा मायने नहीं रखती थी। इससे आप को इस चुनाव को पूरी तरह स्थानीय बनाने में मदद मिली और भलस्वा तथा गाजीपुर में कचरे के पहाड़ चुनाव का मुद्दा बन गए।

2014 में मोदी की भारी जीत के बाद राज्य दर राज्य यह देखने को मिला। जहां भी चुनावी मुद्दा क्षेत्रीय या स्थानीय था वहां भाजपा को चुनौती का सामना करना पड़ा। यह चुनौती तब और गंभीर हो गई जब साल बीतने के साथ उनकी पार्टी के क्षेत्रीय नेता और कमजोर हो गए।

2023 में यही बात मोदी के लिए चिंता का विषय बनेगी। क्या वह और उनकी पार्टी कर्नाटक, मध्य प्रदेश और उसके बाद तेलंगाना में चुनाव को राष्ट्रीय मुद्दों पर ले जा सकेंगे? यदि राहुल गांधी दूरी बनाए रखते हैं तो भी मोदी के नाम पर वोट जुटाना आसान नहीं होगा। चुनावों का मोदी बनाम राहुल न होना भी भाजपा को नुकसान पहुंचाएगा। तब मोदी क्या करेंगे? क्या किसी तरह चरम राष्ट्रवाद या हिंदुत्व की भावना में और अधिक उभार की कोशिश आने वाले साल में मोदी की अहम चुनौती यही होगी कि चुनाव को स्थानीय मुद्दों से कैसे दूर करें? अब तो डबल इंजन की सरकार का नारा भी कारगर नहीं है। जरा सोचिए कि कर्नाटक में इसके काम करने की क्या संभावना है? क्या मोदी वहां बोम्मई के प्रदर्शन पर वोट मांग सकते हैं? अब तो विपक्ष के 70 साल के कुशासन का हवाला देकर वोट मांगना भी शायद आगे काम न आए। सत्ता में आने के नौ वर्ष बाद यह कारगर नहीं दिखता।

हिंदुत्व के मोर्चे पर पार्टी के बड़े मिशन यानी अनुच्छेद 370 और राम मंदिर पूरे हो चुके हैं। समान नागरिक संहिता पर चर्चा चल रही है और भाजपा नेता इसमें जमकर हिस्सेदारी कर ही रहे हैं। लेकिन हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते हैं कि यह मुद्दा लोगों को उतना ही उद्वेलित करेगा जितना मंदिर या कश्मीर का दर्जा। तीन तलाक का मसला भी हल हो चुका है तो अब बचा अति राष्ट्रवाद।

बदलती वैश्विक और क्षेत्रीय हकीकतों के कारण नए गतिरोध उत्पन्न हुए हैं और एक नया राष्ट्रवादी रुझान उभर रहा है। पाकिस्तान अपनी आंतरिक अशांति, सैन्य और आर्थिक अस्थिरताओं से दो चार है। पश्चिम ने उसे त्याग दिया है और उसका अहम साझेदार चीन रूस और यूक्रेन के युद्ध के कारण ध्यान नहीं दे पा रहा है। इसके बावजूद पाकिस्तान के साथ आसानी से विवाद भड़काया जा सकता है। लेकिन जब चीन लद्दाख में जमा हुआ है तो क्या आप ऐसा करना चाहेंगे?

चीन की ओर से एक राष्ट्रवादी चुनौती है लेकिन उसे लेकर इतनी सावधानी बरती जा रही है कि विदेश मंत्री और रक्षा मंत्री भी इस बारे में कभी-कभी ही बात करते हैं वह भी काफी कूटनीतिक और सहमे हुए लहजे में। प्रधानमंत्री कभी चीन को किसी बात का दोष नहीं देते। बल्कि बाली में उन्होंने आगे बढ़कर शी चिनफिंग से बात शुरू की।

चीन पाकिस्तान नहीं है। आप चीन के साथ कुछ भी इस तरह शुरू नहीं कर सकते कि बाद में जीत का दावा करके उसे खत्म कर सकें। पुलवामा-बालाकोट की तरह नहीं जहां दोनों पक्षों ने अपने-अपने देश में जीत की घोषणा कर दी थी। यहां फिर वही सवाल आता है जिससे हमने शुरुआत की थी यानी मोदी और उनकी विचारधारा। आठ वर्षों ने उन्हें सिखाया है कि उन्हें चुनावों में जीत उनके व्यक्तित्व और चेहरे की वजह से मिलती है। उनकी पार्टी में योगी आदित्यनाथ के अलावा आज दूसरा ऐसा कोई चेहरा नहीं है जिसका मुखौटा उसके मतदाता पहनें। दूसरी बात यह कि कोई भी आरएसएस के नाम पर वोट नहीं देता।

2024 में मोदी की स्थिति अच्छी रहेगी क्योंकि लोग मोदी के नाम पर मतदान करेंगे। हालिया चुनाव इस बात की पुष्टि करते हैं कि मोदी नामक व्यक्ति और उसकी छवि ने पार्टी और उसके संरक्षक आरएसएस को पीछे छोड़ दिया है।

एक सर्वशक्तिमान व्यक्तित्व करीब 100 साल पुरानी विचारधारा को वोट जुटाने की अपनी क्षमता के सहारे छोटा साबित कर रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा....

सुबालोपनिषद् (भाग-11)

गतांक से आगे...

यह मन, विचारणीय विषय को प्राप्त करता है, इस कारण से यह विचारणीय विषयों में लीन हो जाता है, यह विचारणीय, चन्द्रमा की तरफ गमन कर जाता है, इसलिए यह चन्द्रमा में ही लय हो जाता है, यह चन्द्रमा, शिशु नाड़ी की ओर गमन करता है, इस कारण यह शिशु में ही विलीन हो जाता है, यह शिशु नाड़ी श्येन की ओर गमन करती है, इस कारण वह श्येन में ही लय होती है, यह श्येन, विज्ञान की तरफ गमन करता है, इस कारण से यह विज्ञान में ही विलीन हो जाता है तथा यह विज्ञान, तुरीय के प्रति गमन करता है, इस कारण से यह मृत्युरहित, भयरहित, अशोक, अनन्त एवं अबीज तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। यह आत्मा सैकड़ों तरह के प्रवचन करने मात्र से नहीं प्राप्त होता, अनेकों शास्त्रों का अध्ययन करने से भी नहीं मिलता, बुद्धि तथा ज्ञान का सान्निध्य प्राप्त कर लेने से भी यह आत्मा प्राप्त नहीं होता। वैसे ही मेधा, वेदों, यज्ञों, उग्र तपश्चर्या, सांख्यज्ञान, योग, आश्रम अथवा अन्य दूसरे प्रयत्नों से भी वह आत्मा प्राप्त नहीं होता। ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला जो मनुष्य प्रवचन के द्वारा, प्रशंसा (गुरु सेवा) के द्वारा तथा व्युत्थान (सामान्य जीवन क्रम से ऊपर उठकर) के द्वारा आत्मज्ञानपरक शास्त्रों का श्रवण करता हुआ शम, दम, उपरति एवं तितिक्षा में स्थित होकर समाधिनिष्ठ हुआ आत्मा को आत्मा में ही देखता है, वही आत्म तत्त्व को प्राप्त कर पाता है। जो भी मनुष्य इस तरह से आत्मतत्त्व को जानता है, वह सभी का आत्मा हो जाता है।

इसके बाद पुनः रैक्व मुनि ने घोराङ्गिरस से प्रश्न किया कि हे भगवन्! किसमें सभी प्रतिष्ठित हैं? तदनन्तर उन घोराङ्गिरस ने कहना प्रारम्भ किया कि रसातल के लोकों में सभी कुछ रहता है। यह रसातल का लोक किसमें स्थित है ? तब उन्होंने कहा कि यह भू लोक में स्थित है। यह भूलोक किसमें स्थित है? उन्होंने कहा-यह भुवः लोक में प्रतिष्ठित है। यह भुवर्लोक किसमें ओत-प्रोत है? तब उन्होंने बताया कि यह स्वर्लोक में स्थित है। यह स्वर्लोक किसमें ओत-प्रोत है? उन्होंने उत्तर दिया कि यह महर्लोक में प्रतिष्ठित है। यह महर्लोक किसमें ओत-प्रोत है? (उत्तर) यह जनोलोक में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार उन ऋषि ने पुनः कहा- यह जनोलोक किसमें ओत-प्रोत है? (उत्तर) यह तपोलोक में स्थित है, ऐसा उन्होंने कहा। (प्रश्न) यह तपोलोक किसमें ओत-प्रोत है? उन्होंने कहा कि यह सत्यलोक में स्थित है।

क्रमशः

राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस

राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस 14 दिसम्बर 2022 को मनाया जायेगा। भारत में राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस लोगों को ऊर्जा के महत्व के साथ ही साथ बचत, और ऊर्जा की बचत के माध्यम से संरक्षण बारे में जागरुक करना है। ऊर्जा संरक्षण का सही अर्थ है ऊर्जा के अनावश्यक उपयोग को कम करके कम ऊर्जा का उपयोग कर ऊर्जा की बचत करना है। कुशलता से ऊर्जा का उपयोग भविष्य में उपयोग के लिए इसे बचाने के लिए बहुत आवश्यक है। ऊर्जा संरक्षण की योजना की दिशा में अधिक प्रभावशाली परिणाम प्राप्त करने के लिए हर इंसान के व्यवहार में ऊर्जा संरक्षण निहित होना चाहिए।

भारत के सभी और प्रत्येक नागरिक कुशलतापूर्वक ऊर्जा के उपयोग और भविष्य के लिये ऊर्जा की बचत के बहुत से तरीकों के बारे में जानते हैं। वो सभी नियमों, विनियमों और ऊर्जा दक्षता का समर्थन करने के लिये भारत सरकार द्वारा लागू की गई नीतियों का पालन करते हैं। भारत के नागरिक 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान ऊर्जा के उपयोग को कम करने के अभियान में प्रत्यक्ष अंशदान का भुगतान कर रहे हैं। देश में सकारात्मक बदलाव लाने और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये बच्चे बहुत बड़ी उम्मीद हैं।

ऊर्जा संरक्षण के क्या उपाय हैं?

थर्मल पर्दे, स्मार्ट खिड़कियों के अलावा खिड़कियाँ ऊर्जा का संरक्षण करने में सबसे बड़ा कारक है।

ऊर्जा की एक बड़ी मात्रा को प्राकृतिक रोशनी और कॉम्पैक्ट फ्लोरोसेंट लैंप या सीएफएल से (15 वॉट और अन्य साधनों के द्वारा ऊर्जा खपत का केवल 1/4वां भाग की खपत), फ्लोरोसेंट बल्ब, रैखिक फ्लोरोसेंट, सौर स्मार्ट टॉर्च, स्काई लाइट, खिड़कियों से प्रकाश व्यवस्था और सौर लाइट का प्रयोग करके बचाया जा सकता है।

जल संरक्षण भी बेहतर ऊर्जा संरक्षण का नेतृत्व करता है। लोगों के द्वारा हर साल लगभग हजारों गैलन पानी बर्बाद किया जाता है जिसकी विभिन्न संरक्षण के साधनों जैसे- 6 जीपीएम या कम से कम प्रवाह वाले फव्वारों, बहुत कम फ्लश वाले शौचालय, नल जलवाहक, खाद शौचालयों का प्रयोग करके बचत की जा सकती है।

पृथक्करण सर्दी के मौसम में थर्मल को कम करने के साथ ही गर्मियों में थर्मल प्राप्त करके भी ऊर्जा के संरक्षण में बहुत अहम भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिये, प्राकृतिक ऊन पृथक्करण, घर पृथक्करण, कपास पृथक्करण, रेशा पृथक्करण, थर्मल पृथक्करण आदि।

पूरे भारत में राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण के अभियान को और प्रभावशाली और विशेष बनाने के लिये सरकार द्वारा और अन्य संगठनों द्वारा लोगों के बीच में बहुत सी ऊर्जा संरक्षण प्रतियोगिताओं का आयोजन कराया जाता है क्योंकि वो ही इस अभियान का मुख्य लक्ष्य है। कई जगहों पर संगठनों के छात्रों या सदस्यों द्वारा ऊर्जा संरक्षण दिवस पर स्कूल, राज्य, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न चित्रकला प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती है। राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण अभियान भारत में ऊर्जा संरक्षण की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए विद्युत मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया राष्ट्रीय जागरूकता अभियान है।

नेपाल चुनाव से नया सवेरा

अरविंद मोहन

चुनाव नतीजों की अंतिम तस्वीर साफ सामने आये बगैर यदि नेपाल में नयी सरकार बनाने की कवायद शुरू हो गयी है, तो इसकी वजह है कि अब नतीजों की दिशा नहीं बदल सकती। यहां 20 नवंबर को चुनाव हुए थे और काफी कुछ दांव पर था, सबसे अधिक तो हर पार्टी और लोकतंत्र की प्रतिष्ठा ही दांव पर थी। इधर पिछले कुछ वर्षों में नेपाल की राजनीति में जितना कुछ हुआ था, उसने यह शक भी पैदा कर दिया था कि क्या नेपाल बगैर राजशाही चल भी पायेगा।

क्या वहां की पार्टियां अपने समाज का मिजाज, वहां की क्षमता का बेहतर इस्तेमाल कर देश बनाने का विचार रखती भी हैं या हवाई नारों और घटिया आचरण से इस गरीब मुल्क के लोगों को सब्जबाग दिखा कर कुछेक लोगों के लिए लूट और सत्ता सुख भोगने का उपकरण भर हैं? हर पार्टी की प्रतिष्ठा गिरी थी। इसमें वे नेता और पार्टी लोगों की नजर में ज्यादा ही गिरे थे, जो किसी भी तरह भारत की तरफ झुके हुए थे।

दो सौ पचहत्तर (275) सीटों वाले नेपाली संसद की 165 सीटों का नतीजा तो हर सीट पर सर्वाधिक मत वाले उम्मीदवार की जीत से तय होना है, जबकि बाकी 110 सीटें पार्टियों को मिले मत के अनुपात से बंटनी हैं. आखिरी हिसाब आने तक जितने नतीजे आये थे, उनसे साफ हो गया था कि नेपाली कांग्रेस की अगुआई वाला पांच दलों का गठबंधन बहुमत पा चुका है। शुरू में लोगों को एक खतरा लग रहा था कि सबसे ज्यादा सीटों पर चुनाव लड़ने के चलते कम्युनिस्ट पार्टी नेपाल- यूएमएल आखिर में आगे आ सकती है।

ओली का रुख भारत के प्रति अनुदार है, इसलिए भी इस नतीजे की कल्पना से भारत के जानकार डरते थे। उन्होंने कालापानी, लिंपियाधुरा और लिपुलेख जैसे इलाके नेपाल के अधीन लाने की घोषणा के साथ चुनाव प्रचार शुरू भी किया था। उनको चीन का साथ ज्यादा सुहाता है जिसकी बड़ी वजह शायद भारत को चिढ़ाना रहा है।

भारत की मुश्किल यह रही है कि वह अभी हाल तक नेपाल राजशाही को ज्यादा करीबी पाता था। फिर वह नेपाली कांग्रेस को अपना मानता था, जिसकी कीमत भी नेपाली कांग्रेस को चुकानी पड़ी थी। वैसे उनके अपने झगड़े, भ्रष्टाचार और नेताओं का आचरण उनकी प्रतिष्ठा गिराने के लिए पर्याप्त थे। यही हाल बाद के समय में मित्र बने माओवादी दल का भी था। पर सबसे बुरा हाल मधेशी दलों का था, जिनका आचरण भी हल्का रहा और जिन्होंने आपसी लड़ाई भी खूब की।

यही कारण है कि 51 प्रतिशत जनसंख्या के बावजूद मधेशी लोग एक बार फिर राजनीतिक रूप से हाशिए पर पहुंच गये हैं, पर मधेश को एक जैसा प्रदेश और वहां के पूरे समाज को भारतीय समाज का एक विस्तार भर मानना भी बड़ी गलती है। इस बार भी ऐसा हुआ है कि दो बड़ी पार्टियों के विजयी गठबंधन का हिस्सा होने के बावजूद मधेश की छोटी पार्टियों ने छिटपुट सीटें ही जीती हैं.

राजनीतिक अस्थिरता के दौर में यह संख्या भी महत्वपूर्ण हो सकती है, पर प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा ने इस चुनाव में और उससे पहले गठबंधन बनाने में जो समझदारी दिखाई है, उससे उम्मीद बंधती है कि आगे की स्थितियों को भी वे और यह गठबंधन बेहतर ढंग से संभालेगा।

असल में यह समझ ही इस बार के नेपाल चुनाव का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है कि ऊंचे-ऊंचे आदर्श और वैचारिक नारों की जगह गठबंधन ही नेपाली समाज और राजनीति के लिए सबसे उपयुक्त व्यवस्था है। जब समाज इतनी विविधता से भरा हो और उसके कार्य-व्यापार में परस्पर सहयोग और मेल-मिलाप ही सबसे प्रबल गुण हैं, तो गठबंधन की राजनीति ही उसके सबसे उपयुक्त है। कभी नेपाली कांग्रेस की पहुंच समाज के हर वर्ग और क्षेत्र तक थी, पर उसके कमजोर पड़ने के साथ बिखराव बढ़ा।

अब यदि उसकी पहल पर पांच दलों का गठबंधन बना और एकजुट चुनाव लड़ा गया, तो यह नयी शुरुआत है। इस गठबंधन में नेपाली कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी है, पर प्रतिपक्षी गठबंधन की तरह यह एकतरफा नहीं थी। इसकी आधी सीटें साझीदारों के पास रहीं. दूसरे, इस बार नेपाली कांग्रेस ने नया नेतृत्व विकसित करने की कोशिश की है। तीसरे, देउबा के साथ माओवादी नेता प्रचंड और एमाले नेता माधव नेपाल का अच्छा मेल है। ऐसा मेल ओली के नेतृत्व वाले गठबंधन में नहीं दिखा।

यदि चुनाव होंगे और लोकतंत्र अपनी रंगत में आयेगा, तो उसमें दूसरी चीजें भी निकलेंगी हीं. इस चुनाव में गठबंधन राजनीति का उभार, नेतृत्व का तालमेल, नये नेतृत्व के उभरने और मधेशी पार्टियों एवं मधेश की बिखराव वाली राजनीति का सिमटना बड़ा बदलाव है, तो गीत और संगीत की दुनिया में रचे-बसे रवि लामिछने की नेतृत्व वाली स्वतंत्र पार्टी के उदय ने सबको उनकी राजनीति को गंभीरता से लेने को मजबूर किया। काठमांडू समेत शहरी सीटों पर उनकी पार्टी के प्रदर्शन ने सभी स्थापित दलों के नेताओं को चिंतित किया। चुनाव मैदान में इस बार राजतंत्र की पक्षधर पार्टियां और नेता भी थे, पर उनका प्रदर्शन पहले से खराब हुआ है। इसलिए यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि इस बार के चुनाव दबावों के बावजूद बेहतर हुए हैं, बेहतर नतीजे लेकर आये हैं और बेहतर भविष्य की ओर इशारा करते हैं। वर्ष 1990 के बाद शुरू हुए लोकतांत्रिक प्रयोग में कभी इतनी उम्मीद भरी चीजें नहीं दिखी थीं।

गांधी आज

व्यापारियों द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में

महात्मा गांधी भारतीय व्यापारियों से देश को स्वतंत्र कराने में उनकी भूमिका का उल्लेख एक स्वागत समारोह में कर रहे है। गांधीजी ने व्यापारियों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया और राजनीति में सहयोग करने कहा। अक्टूबर 19, 1917 में आयोजित कार्यक्रम को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा ,

व्यापारियों के पास बुद्धि तथा धन आदि तो होते ही हैं; इनके बिना उनका काम ही नहीं चल सकता। पर अब इसके साथ-साथ उन लोगों में देश-भक्ति की प्रबल भावना भी होनी चाहिए देश-भक्ति धर्म की दृष्टि से भी आवश्यक है। यदि देश-भक्ति की भावना धार्मिक वृत्ति से उद्भूत हो, तो उसका स्वरूप परम तेजस्वी होगा इसलिए यह आवश्यक है कि व्यापारी वर्ग में देश-प्रेम का भाव जगाया जाये ।

व्यापारी लोग आजकल सार्वजनिक कामों में पहले की अपेक्षा अधिक हिस्सा लेते हैं। यदि वे देश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर राजनैतिक हलचलों में भी हाथ बँटाने लगें तो स्वराज्य को हाथपर घरे आँवले के समान सहज प्राप्य समझिए आप लोगों में से कुछ सोचते होंगे कि यह कैसे हो सकता है। किन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जैसे ही व्यापारी वर्ग के मन में देश-भक्ति को भावनाने घर किया कि हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ।

स्वराज्य-प्राप्ति की चाबियाँ में सोने की चाबी तो स्वदेशी का व्रत ही है। अपने देश में लोगों से स्वदेशी व्रत का पालन करवाना व्यापारियों के हाथ में है, और व्यापारी ही इसे लोकप्रिय भी बना सकते हैं। आपसे नम्र निवेदन है कि आप लोग इस कार्य को एक बार अपने हाथ में लें तो फिर देखेंगे कि आप कैसे-कैसे आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होते हुए भी मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस देश में स्वदेशी के चलन और आन्दोलन का सत्यानाश व्यापारी वर्गने ही किया है। वे देशी माल के बदले लोगों के सामने विदेशी माल पेश करते हैं और भाव बढ़ाते चले जाते हैं।